।। ओ३म्।।

भारत का एक ऋषि

लेखक
श्रीयुत संत रोमां रोल्या
(सुप्रसिद्ध यूरोपियन (फ्रेंच) ग्रंथकार)

अनुवादक और सम्पादक
श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक

लेखक : श्रीयुत संत रोमां रोल्या

नवीन संस्करण : 2018

ISBN 978-81-936395-0-4

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य : 20/-

प्रकाशक :

वैदिक प्रकाशन
दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा (पं.)
15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23360150
Website : www.thearyasamaj.org
E-mail : aryasabha@yahoo.com
Mobile : 9540040339 9540045898
Online book reading :
www.elibrary.thearyasmaj.org
Online shopping :
eshop.thearyasamaj.org

मुद्रक : सुपर प्रिंट
2046 बाजार सीताराम, दिल्ली–110006

elibrary.thearyasamaj.org

।। ओ३म्।।

प्रकाशकीय

19वीं सदी के महानतम ऋषि दयानन्द सरस्वती के विशाल व्यक्तित्त्व अनेक सामाजिक, राष्ट्रीय मानवतावादी, वेदादि से सम्बन्धित कार्यों से प्रभावित होकर भारतीय लेखकों ने और विदेशियों ने ऋषि के विषय में अपने-अपने उद्‌गार प्रकट किये थे, उनमें से एक फ्रेंच लेखक सन्त रोमां रोल्या हैं। रोमां रोल्या ने भारत से हजारों मील दूर बैठे होने पर भी ऋषि दयानन्द के कार्यों से प्रभावित होकर उनके जीवन व कार्यों की प्रशंसा की है। भारत में बैठे पक्षपाती लोग जो ऋषि दयानन्द के उज्ज्वल व्यक्तित्व को प्रकट करने से डर रहे थे और सत्य पर पर्दा डाल रहे थे, लेकिन सन्त रोमां रोल्या और अन्य पाश्चात्य लेखकों ने ऋषि दयानन्द सरस्वती के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं।

इस लघु पुस्तक में लेखक ने संक्षेप में ऋषि दयानन्द के महान् व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डाला है। भारत देश में अनेक बुराईयां, अनुचित परम्पराएं, अन्धविश्वास आदि का भयंकर साम्राज्य था, लेकिन ऋषि ने इन सभी बुराईयों के विरुद्ध क्रान्तिकारी वैचारिक आन्दोलन आरम्भ करके भारत की डूबती हुई नैय्या को पार लगाया। जो अछूत माने जाते थे उनको पूर्ण सम्मान दिलाया और महिलाओं को अनेक अधिकारों के साथ वेद पठन-पाठन का अधिकार भी प्रदान करवाया।

ऋषि दयानन्द ही भारत के पुनर्जागरण आन्दोलन के सच्चे और प्रथम उद्‌घोषक थे। स्वदेश, स्वभाषा, स्वराष्ट्र और स्वसंस्कृति-सभ्यता की बात कहने वाले व्यक्ति ऋषि दयानन्द ही थे। यह लघु पुस्तक प्रत्येक व्यक्ति को ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और कार्यों की जानकारी प्रदान करेगी।

-विनय आर्य
महामन्त्री

।। ओ३म्।।

प्रथम संस्करण की भूमिका

यूरोप के प्रसिद्ध साहित्यक विद्वान् श्री रोमां रोल्या ने श्री रामकृष्ण परमहंस का जीवन चरित्र लिखते हुए वर्तमान भारत की धार्मिक एवं राष्ट्रीय जागृति के सूत्रधार महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के सम्बन्ध में भी आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करना आवश्यक समझा। रामकृष्ण मिशन ने उक्त पुस्तक के लिखवाने और प्रकाशन पर बहुत बड़ी धन-राशि खर्च की है। स्वर्गीय स्वामी वेदानन्द जी महाराज ने मुझे एक बार बताया था कि धन तो खर्च किया रामकृष्ण मिशन ने किन्तु सन्त रोमां रोल्या के मस्तिष्क पर महर्षि दयानन्द के महान् व्यक्तित्व और उनके पवित्र सिद्धान्तों एवं देश सेवा की जो अमिट छाप लग चुकी थी उसे वह एक भारतीय सन्त की जीवनी लिखते हुए भुला न सके। आज देश का नव निर्माण करते समय लोग दयानन्द और आर्य समाज को पीछे धकेल कर भुलाना चाहते हैं। भारत से हजारों मील दूर बैठे हुए विदेशी विद्वान के विचार इस प्रकार के भारतियों की जान बूझ कर एक सत्य पर पर्दा डालने वाली तन्द्रा भंग करने में सहायक होंगे ऐसी आशा करनी चाहिए। सन्त रोमां ने अपनी स्वाभाविक लेखन शैली का चमत्कार दिखाते हुए जिन शब्दों में महर्षि दयानन्द के कार्यों की सराहना की है वह स्वतन्त्र भारतीय जनता के लिए एक गौरव की वस्तु बन गई है। लगभग एक वर्ष हो गया प्रस्तुत अनुवाद करने के लिए मैंने श्री स्वामी वेदानन्द जी से प्रार्थना की थी जो कार्यवश श्री स्वामी जी महाराज न कर सके। उनके निधन के पश्चात् श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक ने बड़ी योग्यता पूर्वक अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद किया। इस समायोजित कार्य के लिए मैं श्री पाठक जी को धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मुझे विश्वास है कि इस लघु पुस्तिका द्वारा जनता यह जानने में समर्थ होगी कि भारत के ही नहीं, यूरोप के विद्वान भी महर्षि दयानन्द के महान् कार्यों के प्रति किस प्रकार नतमस्तक हैं।

श्रद्धानन्द बलिदान भवन
दिल्ली 8-3-1857

रामगोपाल, मंत्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

अनुवादक का प्राक्कथन

श्रीयुत स्व. रोमां रोल्या आधुनिक यूरोप के उन उच्च कोटि के ग्रंथकारों और साहित्यकों में से हैं जो यूरोप के महान् मस्तिष्कों का प्रतिनिधित्व करने के लिए प्रख्यात हैं। उन्होंने फ्रेंच भाषा में श्री रामकृष्ण परमहंस की जीवनी लिखी जिसके प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के श्रीयुत प्रो.ई. ऐफ.मलकौलन स्मिथ एम.ए., पी-एच.डी. (कैन्टाव) ने किया और जो 1930 में अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित हुआ। इस जीवन चरित्र में विद्वान् ग्रंथकर्ता ने एकता के निर्माता 'BUILDERS OF UNITY' शीर्षक में लगभग 25 पृष्ठों में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के विषय में आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया है। उनका दृष्टिकोण पाश्चात्य था और यहां से बहुत दूर बैठे लिख रहे थे। वे सद्भावना रखते हुए भी महर्षि दयानन्द के जीवन के बहुमुखी पार्श्वों का ठीक-ठीक मूल्यांकन करने और प्रकाश में लाने में कहीं-कहीं असमर्थ रहे। फिर भी उन्होंने उपलब्ध सामग्री के आधार पर महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा उसका ऐतिहासिक मूल्य है। कई स्थलों पर तो उन्होंने महर्षि दयानन्द के अभिनन्दन में कलम तोड़ दी है। इस अनुवाद में जो सन्दर्भ हमें अनावश्यक और अप्रासंगिक जान पड़े, वे छोड़ दिये गये हैं और जिनके सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की स्थिति के स्पष्टीकरण की आवश्यकता अनुभव हुई उनके साथ स्पष्टीकरण दे दिया गया है।

यूरोप के विद्वानों का दयानन्द और आर्य समाज के सम्बन्ध में दृष्टिकोण क्या है इसकी जानकारी आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य और प्रेमी को हो जाय और आर्य समाज के बाहर के लोगों विशेषत: शिक्षित वर्ग को महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की महत्ता को समझने में सहायता मिल जाये इसी बात को लक्ष्य में रख कर यह प्रयास किया गया है।

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् और नेता श्रीयुत पं. गंगाप्रसाद जी एम.ए. रिटायर्ड चीफ जज ने इस अनुवाद को देखकर बहुमूल्य निर्देशों से उपकृत किया है, जिसके लिए मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूं।

रघुनाथ प्रसाद पाठक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
9-3-1957

श्रद्धानन्द बलिदान भवन
रामलीला मैदान, नई दिल्ली-2

elibrary.thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द के विषय में लेखके के चुने हुए उद्‌गार

(1) This man (Dayanand) with the nature of a lion is one of those whom Europe is too apt to forget when she judges India[but whom she will probably be forced to remember to her cost, for he was that rare combination, a thinker of action with a genius for leadership.

सिंह समान निर्भीक प्रकृति वाला यह महापुरुष उन व्यक्तियों में था जिन्हें भारत का मूल्यांकन करते समय यूरोप भुलाने की चेष्टा करता हुआ भी भुला न सकेगा, क्योंकि ऐसा करना उसके (यूरोप के) लिए महंगा सौदा सिद्ध होगा। इस महान पुरुष दयानन्द में विचार, कर्म और नेतृत्व की प्रतिभा का अनुपम सम्मिश्रण था।

(2) Dayanand was not a man to come to an under standing with religious philosophers imbued with western ideas.

दयानन्द पाश्चात्य विचारों से विमोहित दार्शनिकों के साथ समझौता करने वाले महानुभाव न थे।

(3) It was impossible to get the better of him for he possessed an unrivalled knowledge of Sanskrit and the Vedas while the burning vehemence of his words brought his adversaries to naught. They likended him to a flood. Never since Shankara had such a prophet of Vedism appeared. (P. 150)

उन (दयानन्द) पर विजय पाना असम्भव था क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भंडार थे। उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात हो जाया करता था। वे लोग जल की प्रबल बाढ़ के साथ दयानन्द की तुलना किया करते थे। शंकराचार्य के पश्चात् दयानन्द जैसा वेदवित् भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ।

(4.) Dayanand s stern teachings corresponded to the thought of his countrymen and to the first stirrings of Indian nationalism to which he contributed. (P.153)

दयानन्द की उग्र और प्रौढ़ शिक्षायें उसके देशवासियों की विचारधारा के अनुकूल थीं और उन शिक्षाओं से भारतीय राष्ट्रीयता का सर्वप्रथम नवजागरण हुआ।

(5.) The enthusiastic reception accorded to the thunderous champion of the Vedas, a Vedist belonging to a great race and penetrated with the sacred writing of ancient India and with her heroic spirit, is then easily explained. He alone hurled the defiance of India against her invaders. (P. 157)

महान वीर योद्धा दयानन्द का उत्साहपूर्वक स्वागत होने का कारण इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में सहज ही में समझ में आ सकता है कि वे स्वयं वेदों के उग्र प्रचारक थे और वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और मर्मज्ञ थे। वे ऋषियों की परम्परा के अंग थे और वीर-भावना के साथ प्राचीन भारत के पवित्र ग्रंथों को साथ लेकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने अकेले ही भारत पर आक्रमण करने वालों के विरुद्ध मोर्चा लगाया।

(6) He had no pity for any of his fellow country men past or present who had contributed in any way to the thousand year decadence of India. at one time the mistress of the world. (P.158)

दयानन्द ने अपने देश के प्राचीन व अर्वाचीन किसी भी निवासी को क्षमा नहीं किया जिसने किसी न किसी रूप में उस भारत के 1000 वर्ष से हुए पतन में योग दिया था, जो एक समय संसार का सिरमौर था।

(7) It was in truth an epoch making date for India when a Brahman not only acknowledged that all human beings have the right to know the Vedas, Whose study had been previously prohibited by orthodox Brahmans, but insisted that their study and propaganda was the duty of every Arya. (P.159)

सत्य यह है कि भारत के लिए वह दिन एक युग-प्रवर्त्तक दिन था जब एक ब्राह्मण ने न केवल यह स्वीकार किया कि उस वेद-ज्ञान पर मानव मात्र का अधिकार है। जिनका पठन-पाठन उनसे पूर्व के कट्टर पंथी ब्राह्मणों ने निषिद्ध कर दिया था, अपितु इस बात पर भी बल दिया कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है।

(8.) Dayanand transfused with the languid body of India his own formidable energy, his certainty, his lion's blood. His Words rang with heroic power. (P.161)

दयानन्द ने भारत के निष्प्राण शरीर में अपना अदम्य उत्साह, अपना दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प और सिंह जैसा रक्त भर उसे सजीव किया। उसके शब्द वीरोचित शक्ति के साथ गूंज गये।

(9.) Above all he would not tolerate the abominable injustice of the existence of untouchables and no body has been a more ardent champion of their outraged rights. They were admitted to the Arya Samaj on a basis of equality. (P.162-163)

सबसे मुख्य बात यह है कि दयानन्द को अस्पृश्यों की विद्यमानता का घृणित अन्याय सर्वथा असह्य था। उनके अपहृत अधिकारों का जितनी उग्रता से दयानन्द ने समर्थन किया उतनी उग्रता से अन्य किसी ने नहीं किया। अस्पृश्य कहे जाने वाले जन पूरी समानता के आधार पर आर्य समाज में प्रविष्ट होते हैं।

(10) He was in fact the most vigorous force of the immediate and present action in India at the momen of the rebirth and reawakening of the moment of the rebirth and reawakening of the national consciousness.

वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जन्म और जागरण में जो इस समय (1930) उस देश में अपने पूर्ण यौवन में देखाई पड़ रही थी, उसके सबसे प्रबल प्रेरणा स्रोत दयानन्द थे।

।।ओ३म्।।

सामान्य कथा

1–जन्म व गृहत्याग

केशवचन्द्र सेन के ब्राह्मसमाज के प्रभाव का निराकरण करने और भारतवर्ष को पश्चिमी रंग में रंगने वाले समस्त प्रयत्नों को विफल बनाने के लिए भारतीय धार्मिक विचार धारा ने एक विशुद्ध भारतीय समाज को जन्म दिया और उसके शीर्ष स्थान पर दयानन्द सरस्वती के रूप में एक महान व्यक्तित्व को ला बिठाया।[1]

सिंह समान निर्भीक प्रकृति वाला यह महापुरुष उन व्यक्तियों में था जिन्हें भारत का मूल्यांकन करते समय यूरोप भुलाने की चेष्टा करता हुआ भी भुला न सकेगा, क्योंकि ऐसा करना उस (यूरोप) के लिए मंहगा सौदा सिद्ध होगा। इस महान् पुरुष में विचार, कर्म और नेतृत्व की प्रतिभा का अनुपम सम्मिश्रण विद्यमान था।

1– उनका वास्तविक नाम जिसका उन्होंने संन्यास लेने पर स्वयं परित्याग कर दिया था मूलशंकर था। सरस्वती उनके गुरु का उपनाम था जिनको वे अपना सच्चा पिता मानते थे। दयानन्द की जीवनी के लिए श्रीयुत स्व. ला. लाजपतराय (महान् भारतीय राष्ट्रीय नेता) का सुप्रसिद्ध ग्रंथ The Arya Samaj (दि आर्य समाज) पढ़ना आवश्यक है, जिसकी भूमिका श्रीयुत सिडनी वेब ने लिखी है और जो लांग मैंस, ग्रीन एण्ड को. (लन्दन) द्वारा 1915 में प्रकाशित हुआ था।

दयानन्द का प्रादुर्भाव गुजरात की भूमि में हुआ था जिसने 50 वर्ष के पश्चात् गांधी जी को जन्म दिया। दयानन्द का जन्म मौरवी (काठियावाड़) राज्य में एक सम्पन्न प्रतिष्ठित साम-वेदीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता एक राज्य कर्मचारी थे जो शिव के परम भक्त थे। उनकी प्रकृति कठोर थी इसलिए बालक दयानन्द का पालन-पोषण धार्मिक कट्टरता के वातावरण में हुआ। 8 वर्ष की आयु में उनका उपनयन संस्कार किया गया और इस संस्कार से सम्बद्ध नियंत्रण[2] का उससे भली-भांति पालन कराया गया। ऐसा लगता था मानो वह अपने पिता का स्थान ग्रहण कर लेने पर धार्मिक कट्टरता का स्तम्भ बनेगा परन्तु ऐसा बनने के स्थान पर वह सैमसन[3] बन गया जिसने मंदिरों की नींव हिला दी। मानवीय प्रयत्न की विफलता के अनेक उदाहरणों में से यह एक अत्यंत आश्चर्यजनक उदाहरण है, जबकि यह कल्पना कर ली जाती है कि बलात् लादी हुई शिक्षा के सांचे में नवयुवकों के मस्तिष्कों का ढ़ाला जाना और उनके भविष्य का निर्माण किया जाना सम्भव है। इसका सुनिश्चित परिणाम् क्रांति होती है। दयानन्द की क्रांति उल्लेखनीय है। जब वह चौदह वर्ष का

2- इस नियंत्रण का अभिप्राय है विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य, सदाचार, पवित्रता और सादगी का जीवन व्यतीत करना वेदों का स्वाध्याय करना और खान-पान इत्यादि में संयम से रहना।

3- रोम का प्रसिद्ध शक्तिशाली देवता जिसने अपनी शारीरिक शक्ति के प्रयोग से एक पूरे शहर को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला था। यह बाइबिल के प्रसिद्ध कथानक का नायक है जो सैमसन एण्ड डिलैला के नाम से प्रख्यात है।

था तब उसने वहां व्रत रखकर समस्त रात्रि जागते हुए व्यतीत की। अन्य सब भक्तजन सो गये। सहसा ही उसने एक चूहे को भोग की सामग्री खाते और शिव की मूर्ति पर दौड़ते हुए देखा। बस यह पर्याप्त था। बच्चे के हृदय में उत्पन हुई नैतिक क्रांति के सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं किया जा सकता। क्षण भर में ही उसकी श्रद्धा मूर्ति-पूजा पर से हट गई और वह आजन्म हटी रही। रात में ही वह मंदिर छोड़कर घर चला गया और उसने उसी समय से पौराणिक कर्मकाण्ड का परित्याग कर दिया।[4]

यह घटना पिता और पुत्र में भयंकर संघर्ष उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थी। दोनों में संघर्ष होकर रहा। दोनों ही स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति थे जिसके कारण पारस्परिक समझौते के द्वार बन्द हो गए।

21 वर्ष की आयु में बालक दयानन्द बलात् किए जाने वाले विवाह से बचने के लिए घर से भाग गया और पकड़े जाने पर पिता की कैद में रखा गया। वह पुनः भागा और इस बार सदैव के लिए (1845) भाग गया। उसे फिर कभी अपने पिता के दर्शन न हो सके।

2-गुरु विरजानन्द की शिक्षा

प्रत्येक वस्तु से वंचित और भिक्षा पर अवलम्वित सम्पन्न घराने का यह ब्राह्मण कुमार भगवां वस्त्र धारण किए हुए साधू वेष में 15 वर्ष तक भारत में भ्रमण करता फिरा। दयानन्द ने विद्वानों, तपस्वियों और योगियों की खोज में खाक छानी। वह भारत के

4- आर्य समाज इस रात्रि को दयानन्द-बोध रात्रि के रूप में मनाता है।

प्रत्येक तीर्थ पर गया और धार्मिक जिज्ञासाओं में रत रहा। उसे अनेक कष्ट सहन करने पड़े। भूख का, अपमान का और खतरों का सामना किया। वह अर्से तक जन-साधारण से दूर रहा क्योंकि वह संस्कृत के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा न बोलता था। दयानन्द ने अपने चारों ओर अज्ञान, अंधविश्वास गुरुडम, पाखंड और सहस्त्रों लक्षों मूतियां देखी जिनसे उसे घृणा हो गई। अन्त में 1860 के आसपास दयानन्द को मथुरा में एक बूढ़े संन्यासी मिले। जो अन्धविश्वास और मानवीय दुर्बलताओं का खंडन करने में दयानन्द से भी उग्र थे। बचपन से ही उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही थी और 11 वर्ष की आयु में ही वे आश्रयहीन होकर घर से निकल पड़े थे। वह उद्‌भट विद्वान और उग्र प्रकृति के महानुभाव थे। उनका नाम विरजानन्द सरस्वती था। दयानन्द ने अपने को उनके नियंत्रण में रखा, जिसने 17वीं शताब्दी की प्राचीन भावना के अनुसार उसके शरीर आत्मा और ब्रह्मचर्य को और ज्ञान की भट्‌टी में तपाकर बलवान बना दिया।

दयानन्द ने 2 वर्ष तक इस अजेय पुरुष की, शिष्य के रूप में सेवा की। अतः यह स्मरण रखना युक्तिसंगत होगा कि दयानन्द का इसके बाद का कार्यक्रम इस उग्र प्रज्ञाचक्षु की इच्छा-पूर्ति पर केन्द्रित रहा। जब दयानन्द ने अपने गुरु से विदा ली तो उन्होंने अपने शिष्य से तीन प्रतिज्ञाएं कराईः-

1. वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुई पौराणिक अनर्गलताओं का विनाश।
2. गौतम बुद्ध से पूर्व के युग की प्राचीन धार्मिक प्रणालियों की पुनः स्थापना।
3. सत्य का प्रकाश और प्रचार।

दयानन्द ने गुरुदेव से विदा लेते ही उत्तर भारत में प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया परन्तु परमात्मा के उन दयालु मनुष्यों की परम्परा के विपरीत जो अपने स्रोताओं के नेत्रों के समक्ष स्वर्ग के लुभावने दृश्य उपस्थित करते रहते हैं, गीता के वीर नायक अथवा इलियड के हरक्यूलस[5] जैसे महान पराक्रमी वीर दयानन्द ने अपने एकमात्र सत्य विचार के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के वेद-विरुद्ध विचारों को चुनौती दी।

वे अपने काम में इतने सफल हुए कि 5 वर्ष के अल्पकाल में ही उत्तर भारत की कायापलट हो गई। इन 5 वर्षों में 4 या 5 बार विष द्वारा उनके प्राण लेने की चेष्टा की गई। एक बार एक महजहबी पागल ने शिव के नाम पर दयानन्द के ऊपर एक भयंकर विषधर फेंका परन्तु उन्होंने इस सर्प को पकड़कर तत्काल अपने पैर से कुचल दिया। दयानन्द पर विजय प्राप्त करना असंभव था क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भंडार थे और उनके ज्ञान की बराबरी कोई न कर पाता था। उनके शब्दों की

5. दयानन्द की शारीरिक शक्ति के चमत्कारों ने उपमाओं का रूप लिया हुआ है। उन्होंने एक बग्घी में जुड़े हुए दो घोड़ों की प्रबल गति को एक हाथ से रोक दिया था। एक बार एक विरोधी दुष्ट के हाथ से नंगी तलवार छीनकर अपने हाथ से उनके दो टुकड़े कर दिये थे। उनकी गरजती हुई आवाज कोलाहल में भी स्पष्ट सुनाई पड़ती थी।

6. इस प्रतियोगिता को एक ईसाई मिशनरी ने दर्शक के रूप में देखा था। उसने इसका निष्पक्ष और उत्कृष्ट वर्णन किया है, जिसे लाला लाजपतराय ने अपने ग्रंथ में उद्धृत किया है।

(क्रिश्चियन इन्टैलीजेन्स कलकत्ता, मार्च 1870 ई.)

धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मात हो जाया करता था। वे लोग दयानन्द की तुलना जल की बाढ़ के साथ किया करते थे। शंकराचार्य के बाद दयानन्द जैसा वेदविद् भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ।

3-काशी शास्त्रार्थ

शास्त्रार्थ में पराजित हुए पौराणिक पंडितों ने दयानन्द को अपने रोम (बनारस) में आने के लिए आमंत्रित किया। दयानन्द निर्भयता पूर्वक वहां गए और 1869 के नवम्बर मास में उस महान शास्त्रार्थ में प्रवृत हुए जिसकी तुलना होमर के काव्य में वर्णित संग्राम के साथ की जा सकती है। लाखों आक्रान्ताओं के सामने जो उन्हें परास्त करने के लिए उत्सुक थे उन्होंने अकेले 300 पंडितों के साथ शास्त्रार्थ किया, दूसरे शब्दों में पोपगढ़ की अग्रगामिनी और सुरक्षित दोनों सेनाओं के साथ।[6] दयानन्द ने यह सिद्ध किया कि जिन ग्रंथों पर आचरण किया जाता है वे वेदानुकुल नहीं हैं। उन्होंने अपना आधार वेद को बनाया हुआ था। पंडितों का धीरज टूटते हुए देर न लगी। उन्होंने दयानन्द का परिहास और बहिष्कार किया। दयानन्द को अपने चारों ओर निराशा के बादल छाए हुए देख पड़े परन्तु महाभारत जैसे इस संघर्ष की प्रतिध्वनि से समस्त भारत गूंज उठा जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में उनका नाम प्रसिद्ध हो गया।

7. लाला लालजपतराय के कथानुसार जो स्वयं आर्य समाज के साथ सम्बद्ध थे, वेदों की अपौरुषेयता और आवागमन आर्य समाज ब्राह्मसमाज में भेद करने वाले आर्य समाज के दो प्रमुखतम मौलिक सिद्धान्त है।

4–कलकत्ते की यात्रा और ब्रह्मसमाज का प्रभाव 15 दिसम्बर, 1872 से 15 अप्रैल, 1873 तक

दयानन्द कलकत्ता में विराजे और वही रामकृष्ण परमहंस ने उनसे भेंट की। ब्राह्मसमाज ने भी उनका हार्दिक स्वागत किया। केशव (चन्द्र) और उनके अनुयायियों ने जान–बूझ कर उन मतभेदों की उपेक्षा की जो उनमें और दयानन्द में विद्यमान थे। धार्मिक रूढ़ियों और मूर्ति पूजा के विरुद्ध छेड़े हुए अपने धर्म–युद्ध के लिए दयानन्द उन्हें बड़े उपयुक्त साथी जान पड़े परन्तु दयानन्द पाश्चात्य विचारों से विमोहित दार्शनिकों के साथ समझौता करने वाले महानुभाव न थे। उनकी आस्तिकता और फौलाद जैसी दृढ़ वेद–निष्ठा ब्राह्मसमाजियों के सिद्धांतों के साथ मेल न खाती थी जो संशयवाद से ग्रस्त थे और वेदों की अपौरुषेयता एवं आवागमन के सिद्धान्त को स्वीकार न करते थे।[7]

इस पर दयानन्द और ब्राह्मसमाज ने अपना–अपना रास्ता पकड़ा परन्तु केशवचन्द्र सेन के एक सुझाव को उन्होंने स्वीकार किया और वह यह था कि जब तक वे जन–सामान्य की भाषा में अपना प्रचार न करेंगे तब तक उनके प्रचार का प्रभाव व्यापक न होगा। सैद्धान्तिक मतभेद के कारण अलग हो जाने पर भी दयानन्द

8. 1877 में दयानन्द ने विविध धार्मिक नेताओं और उनके विविध सिद्धांतों के मध्य पारस्परिक समझौते का आधार ढूंढ़ निकालने के उद्देश्य से एक सम्मेलन दिल्ली में बुलाया था। इस सम्मेलन में दयानन्द वेद के विरुद्ध पीछे पग बढ़ाने के लिए उद्यत न थे।

कलकत्ता से कुछ लेकर ही निकले।[8] इसके पश्चात् दयानन्द बम्बई गए जहां कुछ समय के उपरांत उनका समाज संगठन की प्रखर प्रतिभा के साथ चमकता हुआ भारत के सामाजिक जीवन में जड़ जमाने लग गया। उन्होंने 7 अप्रैल, 1875 से लेकर (जब लाहौर में आर्य समाज के नियम अन्तिम रूप से निश्चित हुए थे) (1883 तक दयानन्द ने राजपूताना, उत्तर प्रदेश, गुजरात और पंजाब में नई आर्य समाजों का जाल बिछा दिया। उनके प्रचार से लगभग समस्त भारत प्रभावित हुआ। एक प्रांत जहां उनका प्रभाव जड़ न जमा सका, उनके प्रभाव की जड़ जम जाती। -सम्पादक)

एक हत्यारे ने असमय ही उनकी पार्थिव लीला समाप्त कर दी। एक महाराजा की रखैल ने जिनकी दयानन्द ने निर्भीकता से कठोर भर्त्सना की थी, उन्हें जहर दे दिया। 30 अक्टूबर, 1883 को अजमेर में उनके जीवन का अन्त हुआ।

परन्तु उनका छोड़ा हुआ कार्य द्रुतगति से आगे बढ़ता गया। 1891 में सरकारी गणना के अनुसार आर्य समाज के सदस्यों की संख्या 40,000 थी। 1901 में यह संख्या एक लाख 1911 में 2,43,000 और 1921 में 4 लाख 68 हजार हो गई (1931 में यह संख्या लगभग 10 लाख थी। इस समय यह संख्या 80 लाख से कम नहीं है। -संपादक)

आर्य समाज में बड़े-बड़े व्यक्ति, विद्वान, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और प्रसिद्ध राजा महाराजा सम्मिलित हैं। केशव के ब्राह्मसमाज की आंशिक प्रतिध्वनि के विरुद्ध आर्य समाज की स्वत: प्रेरित उत्साहपूर्ण सफलता से यह स्पष्ट हो जाता है कि दयानन्द की प्रौढ़ शिक्षाएं उनके देशवासियों की विचारधारा के बहुत अनुकूल थीं

और उन शिक्षाओं से भारतीय राष्ट्रीयता का सर्वप्रथम नव जागरण हुआ।

भारतीय राष्ट्रीय चेतना की प्रबल बाढ़ में जो कारण काम कर रहे थे उनका यूरोप को स्मरण करा देना कदाचित् उपयोगी होगा। दयानन्द के प्रादुर्भाव के समय भारत पाश्चात्यता के रंग में रंगा हुआ था और उसका सर्वोत्तम पक्ष अन्धकार में विलीन था। लोगों की बुद्धि विकृत होकर उसमें मानसिक दास्ता घर कर गई थी और उनकी स्वतंत्र विचार शक्ति को पाला मार गया था। नवयुवकों का बौद्धिक दृष्टिकोण भ्रष्ट हो जाने से वे लोग अपनी जातीय प्रतिभा से घृणा करने लग गए थे। फलतः आत्म-सुरक्षा की भावना ने विद्रोह कर दिया। दयानन्द ने और उनकी पीढ़ी ने एक ओर प्रजा के कष्टों के, उनके रोष को और उनकी पीढ़ी ने एक ओर प्रजा के कष्टों को, उनके रोष को और उथले यूरोपीय बुद्धिवाद को भारतीय धमनियों में धीरे-धीरे प्रविष्ट होते हुए देखा जो अपनी अहम्मन्यता के कारण भारतीय भावना को जरा भी न समझ पाया था और दूसरी ओर ईसाइयत को देखा जो पारिवारिक जीवन में प्रविष्ट हो जाने पर ईसा की इस भविष्यवाणी को चरितार्थ कर रही थी कि मैं बाप और बेटे को एक-दूसरे से पृथक् करने के लिए आया हूं। यह ऐतिहासिक सत्य है कि जब दयानन्द के मस्तिष्क का निर्माण हो रहा था तब भारत की उच्चतम धार्मिक भावना इतनी जर्जरित हो चुकी थी कि यूरोप की धार्मिक भावना उसकी सन्तोषजनक पूर्ति किये बिना उसके टिमटिमाते दिये को बुझाने की धमकी दे रही थी। ब्राह्मसमाज इस दुरावस्था पर दुःखी था परन्तु उस पर जान में या अनजान में ईसाइयत की छाप लग गई थी। राममोहन राय की

प्रवृत्ति सुधरे हुए अद्वैतवाद की ओर प्रेरित की। देवेन्द्रनाथ में, यद्यपि उन्होंने इस बात को अस्वीकार किया है, ब्राह्मसमाज में ईसाइयत के प्रवेश को रोकने की क्षमता न थी। जब उन्होंने समाज की बागडोर केशवचन्द्र को सौंपी तब उसका लगभग तीन चौथाई भाग ईसाइयत में विलीन हो चुका था। 1880 में केशव के एक आलोचक ने कहा था कि केशव में आस्था रखने वाले लोगों ने ईश्वर के नाम को भी भुला दिया है क्योंकि वे ईसाइयत की ओर अधिकाधिक झुकते हैं।[9] 50 वर्ष के काल में ब्राह्मसमाज के मौलिक सिद्धान्तों में दो बार परिवर्तन हो जाने से लोगों की उसके प्रति श्रद्धा नष्ट हो गई थी। बाद में यह समाज पूर्णतया ईसाइयत में विलीन हो गया था। महान् वीर योद्धा दयानन्द का उत्साह पूर्वक स्वागत होने के कारण इस पृष्ठभूमि के प्रकाश में सहज ही समझ में आ सकता है वे स्वयं वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और मर्मज्ञ थे वे ऋषियों की परम्परा के अंग थे और वीर भावना के साथ प्राचीन भारत के पवित्र ग्रंथों को लेकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने अकेले ही भारत पर आक्रमण करने वालों के विरुद्ध मोर्चा लगाया। उन्होंने ईसाइयत के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की और उनकी भारी विशाल तलवार ने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन्होंने अपने प्रहारों के औचित्य और सीमा को भी ध्यान में न रखा।

.....

9. फ्रैंक लिलिंगटर्न-ब्राह्मसमाजियों और आर्यों का ईसाइयत के प्रति रुख 1901 ई.।

Frank Lillirgtorn-The Brahmo and Arya in their relations to Christianity 1901.

5. बाइबिल की आलोचना

उन्होंने बाइबिल की पृथक्-पृथक् आयतों की समीक्षा करके ईसाई मत की अनुचित एवं हानिकारक समीक्षा की है और उसके वास्तविक अर्थ के साथ भी अन्याय हो गया है क्योंकि उन्होंने हिन्दी का बाइबिल पढ़ा था। (बाइबिल का हिन्दी अनुवाद स्वयं ईसाइयों के बड़े पादरियों द्वारा किया हुआ था जिसे पढ़कर स्वामी जी को शंका हुई और उन्होंने इसकी समीक्षा की। स्वामी जी की आलोचना का लक्ष्य यह देखना-दिखाना था कि यह ग्रन्थ निर्दोष और ईश्वर-कृत है या नहीं, किसी का दिल दुखाना न था। स्वामी जी की अलोचना को उनकी इसी भावना के परिपेक्ष्य में ग्रहण करना उचित है। (वे अपनी आलोचना में बहुत सफल हुए और उन्होंने यह सिद्धकर दिया कि बाइबिल न तो निर्दोष है और न ईश्वरकृत है-सम्पादक) दयानन्द की बाइबिल की आलोचना बाल्टेयर और उनकी Dictionnaire philsophique का स्मरण करा देती है जो दुर्भाग्य से कतिपय आधुनिक हिन्दुओं की [10] ईसाइयत विरोधिनी आलोचना का शस्त्रगार बन गई है। उस पर भी जैसा कि ग्लेसनप्प ने ठीक कहा है कि यह आलोचना यूरोपीय ईसाइयत के लिए स्थिर मूल्य की है जिसे यह जानना चाहिए कि एशियाई विरोधियों ने उसका

10. सार्वभौम शांति और निर्लेपता की भावना को मूर्त रूप देने वाले बुद्ध के अनुयायी इन दिनों आक्रमणात्मक प्रचार के मार्ग पर चल रहे हैं।

कैसा चित्र प्रस्तुत किया है।

6-पुराणों पर प्रहार

दयानन्द के हृदय में कुरान और पुराणों के प्रति भी विशेष सम्मान का भाव न था और उन्होंने ब्राह्मणों के गुरुडम को पैरों तले कुचल डाला था। दयानन्द ने अपने देश के प्राचीन व आर्वाचीन किसी भी निवासी को क्षमा नहीं किया जिसने किसी न किसी रूप में भारत के पतन में योग दिया था जो किसी समय संसार का सिरमौर था।[11] वे सच्चे वैदिक धर्म को विकृत करने वालों की

11. दयानन्द द्वारा प्रस्तुत भारतीय इतिहास का चित्र बड़ा मनोरंजक है। सृष्टि के आदि में आर्यजन भारत में ही आकर बसे थे। आर्य नाम उत्तम पुरुष का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। भारत ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। सृष्टि से लेकर 5000 वर्ष पूर्व तक आर्यों का सार्वभौमिक चक्रवर्ती राज्य था। उनके मतानुसार भारत का अभाग्योदय और वैदिक भावना का ह्रास महाभारत से 1000 वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ जिसमें भारत के सर्वस्व का ही स्वाहा हो गया। महाभारत के समय और उसके पश्चात भारत में जो जड़ पूजा व्याप्त हो गयी थी दयानन्द को न केवल उससे ही अपितु जैन मत से भी घृणा हो गई थी। शंकर के सम्बन्ध में उनकी धारणा थी कि वे हिन्दुओं के आत्मिक क्षेत्र में हुए सर्वप्रथम स्वातन्त्रय संग्राम में चमकते हुए परन्तु अभागे नायक थे। शंकर पाखण्ड का विनाश करना चाहते थे परंतु वे असफल रहे । वे संग्राम के बीच में ही मर गये। वे स्वयं माया में फंसे रहे जिसने दयानन्द में (जो स्वप्नद्रष्टा ही न थे अपितु जो वास्तविकता की भूमि में पल्लवित दृढ़ वृक्ष के समान थे) ग्लानि उत्पन्न की हुई थी।

बड़ी तीखी अलोचना करते थे।[12]

उन्हें लूथर के समान अपने पथभ्रष्ट पोपों (पौराणिक ब्राह्माणों)

.....

12. वे मूर्ति पूजा को पाप और ईश्वरावतार को अनर्गलता मानते थे।

13. 1876 से 1883 के बीच में उन्होंने इस काम में अनेक पंडित लगाये। दयानन्द संस्कृत में लिखते और पंडित जन लोकभाषा में अनुवाद करते थे। मूल भाष्य दयानन्द का ही होता था। उनके भाष्य का क्रम जिसे दुहराने का उन्हें समय नहीं मिला था यह रहता था कि पहले वह मंत्र का अन्वय करते थे। बाद में उसका भावार्थ स्पष्ट करते थे।

14. एक विचित्र घटनाचक्र के अनुसार दयानन्द ने एक पाश्चात्य समाज के साथ जिसका नाम थियोसोफिकल सोसायटी था। अपना सम्बन्ध जोड़ा और वह सम्बन्ध 1879 से 1881 तक बना रहा। इस सम्बन्ध का आधार ईसाइयत की बढ़ती हुई बाढ़ से वेदों का रक्षण था। थियोसोफिकल सोसायटी एक रूसी महिला मैडम ब्लावटस्की तथा अमेरिकन कर्नल अलकाट के द्वारा अमेरिका में 1875 में स्थापित हुई। सन् 1879 में संस्थापक भारतवर्ष में आकर रहने लगे थे और सोसायटी का समाज से सम्बंध हो चुका था। इस सोसायटी से हिन्दुओं को अपनी धर्म शास्त्रों विशेषत: गीता और उपनिषदों के पठन-पाठन की बड़ी प्रेरणा मिली जिनके कर्नल अलकाट ने संस्कृत में संग्रह छपवाये। इसने मुख्यता लंका में भारतीय शिक्षणालयों की स्थापना का भी आन्दोलन किया और अछूतों के लिए शिक्षणालयों के खुलवाने का साहस किया। इस प्रकार इसने भारत की राष्ट्रीय, धार्मिक और सामाजिक जागृति में योगदान किया। दयानन्द ने भी इस सोसायटी के साथ मिलकर काम करना चाहा। परंतु जब सोसायटी ने अपना नियमित योग देने का दयानन्द को निमंत्रण दिया तो उन्होंने इन्कार कर दिया और इस प्रकार यह सोसायटी भारत के अध्यात्मिक प्रभुत्व के अवसरों से वंचित रह गई। (सोसायटी

के साथ भीषण युद्ध करना पड़ा। उन्होंने वेदों का संस्कृत में भाष्य और भाषा में अनुवाद किया।[13] उन्होंने ही सर्वप्रथम वेदों के जल-स्रोत को सबके लिए खुलवाया जिससे वे स्वयं अपनी प्यास बुझा सके। सत्य यह है कि भारत के लिए वह दिन युग-प्रवर्त्तक था जिस दिन एक ब्राह्मण ने न केवल यह स्वीकार किया कि वेदों का ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार मनुष्य मात्र का है जिनका पठन-पाठन उनसे पूर्व कट्टर ब्राह्मणों ने निषिद्ध कर दिया था अपितु इस बात पर भी बल दिया कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है ''(देखें आर्य समाज का नियम)[14] यह सत्य है कि दयानन्द का वेदों का अनुवाद, अनुवाद नहीं अपितु भाष्य है उसकी

के पुरस्कर्ताओं का मिथ्या व्यवहार, ढोंग और अन्धविश्वासों के प्रचार के लिए आर्य समाज का दोहन करने का प्रयास आदि-आदि अनेक कारण थे जिनकी प्रामाणिकता सिद्ध हो जाने पर महर्षि के सामने इस सोसाइटी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प न रह गया था-सम्पादक) ऐंग्लो अमेरिकन तत्त्व ने जिसका पूर्व और पश्चिम के इस आश्चर्यजनक सम्मिश्रण में प्राधान्य या अपनी उच्च परंतु हेय भावना के द्वारा हिन्दू आध्यात्म-विद्या की उदार और व्यापक कार्यप्रणाली को अजीब ढंग से तोड़-मरोड़ दिया था। इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि इस सोसायटी ने अपने निर्भ्रान्त धर्माध्यक्ष का स्वरूप प्रदान किया गया जिसके विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती थी। यह स्वरूप यद्यपि कम निर्दयतापूर्ण न था और भारतीय स्वतंत्र मस्तिष्क को इसी रूप में देख पड़ा था। स्वयं विवेकानन्द जी ने अमेरिका से लौटने पर स्पष्ट रूप से इस स्वरूप का खण्डन किया था। (स्वामी दयानन्द जी ने बहुत पहले से ही इस स्वरूप को जान लिया था।-सम्पादक)

और प्रामाणिकता[15] वेदों की अपौरुषेयता, उनके युद्धघोष[16] और उनके राष्ट्रीय उपास्य देव[17] के पक्ष और विपक्ष में भी बहुत कुछ

.....

15. उनकी प्रबल वेद निष्ठा वेद विरुद्ध समस्त आक्रमणों में प्रबल ढाल का काम देती है।

16. दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के अन्त में दिये हुए अपने एक मन्तव्य में निर्देश देते हैं- मनुष्य उसी को कहना जोकि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दु:ख और हानि-लाभ को समझे: अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा-अनाथ, निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे सनाथ, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दु:ख प्राप्त हो चाहे प्राण भी चले ही जायें परंतु इस मनुष्य रूप धर्म से कभी पृथक् न होवे।

17. आर्य समाज वेदों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करेगा। ईश्वर तथा सांसारिक पदार्थों की जो भावना वेदों तथा शास्त्रों में निहित है मैं उसी को मन्तव्य समझता हूं। दयानन्द का राष्ट्रवाद सार्वभौम था। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है संसार का उपकार करना अर्थात् शारीरिक, मानसिक और सामाजिक उन्नति करना।

(आर्य समाज का नियम सं. 6)

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सार्वभौम धर्म जिसको सदा से सब मानते आए हैं और मानेंगे भी इसलिए उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके इसी को मैं धर्म मानता हूं। दयानन्द सत्य का प्रेमी था। उनके मतानुसार परीक्षा पांच प्रकार की है। इसमें से

कहा जा सकता है। दयानन्द ने भारत के निष्प्राण शरीर में अपना अदम्य उत्साह, दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प और सिंह समान रक्त भर कर उसे सजीव किया।

प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेद विद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम आप्तों का व्यवहार अपनी आत्मा की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिए। समस्त मानव समाज पर वेदों को लागू करने के अपने अधिकार को वह (दयानन्द) क्योंकर छोड़ सकते थे जब कि वे यह मानकर चले थे जैसा कि अरविन्द घोष कहते हैं कि वेदों में धार्मिक, सजीव किया। उसके शब्द वीरोचित शक्ति के साथ गूंजे। उन्होंने भाग्य के भरोसे बैठे और सांसारिक निष्क्रयता में डूबे हुए अपने देशवासियों को स्मरण कराया कि आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है और कर्मों से ही प्रारब्ध बनता है। प्रारब्ध कर्मों का फल होता है। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कर्म करना और सत्कर्म करना उच्च होता है। दयानन्द ने विशेषाधिकार और पक्षपात की घास को साफ करके मार्ग को परिष्कृत करने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। दयानन्द की आध्यात्मिकता शुल्क और गूढ़ देख पड़ती है। 18 (महर्षि दयानन्द की आध्यात्मिकता की उच्चता के विषय में योगी अरविन्द) सांसारिक और वैज्ञानिक सत्य बीज रूप में विद्यमान है। वेद की शिक्षा एकेश्वरवाद की शिक्षा है और वेद के देवता परमात्मा के विविध वर्णनात्मक नाम हैं। साथ ही वे प्रकृति में काम करने वाली उसकी शक्तियों के सूचक हैं। वेदों के सच्चे ज्ञान से ही हम उन सब वैज्ञानिक सच्चाइयों पर पहुंच सकते हैं जो आज की गवेषणा से ज्ञात हुई है। (दी सीक्रेट ऑफ दि वेद, आर्य पत्र नवम्बर 1914 पांडिचेरी) दयानन्द के वैदिक राष्ट्रीय विवरणों की ट्रैक्टों के रूप में एक बाढ़ सी आ गई थी जिनका उद्देश्य प्राचीन भारत के ज्ञान-विज्ञान, कर्मकांड और अनुष्ठान का पुनरुज्जीवन था।

उसके शब्द वीरोचित शक्ति के साथ गूंजे। उन्होंने भाग्य के भरोसे बैठे और सांसारिक निष्क्रयता में डूबे हुए अपने देशवासियों को स्मरण कराया कि आत्मा कर्म करने में स्वतंत्र है और कर्मों से ही प्रारब्ध बनता है। प्रारब्ध कर्मों का फल होता है। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कर्म करना और सत्कर्म करना उच्च होता है। दयानन्द ने विशेषाधिकार और पक्षपात की घास को साफ करके मार्ग को परिष्कृत करने का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। दयानन्द की आध्यात्मिकता शुल्क और गूढ़ देख पड़ती है।[18] (महर्षि दयानन्द की आध्यात्मिकता की उच्चता के विषय में योगी अरविन्द कहते हैं कि ''दयानन्द वे महानुभाव थे जिन्होंने वस्तुओं की आत्मा पर अपना अनिश्चित और अनौपचारिक प्रभाव नहीं डाला अपितु जिन्होंने मनुष्यों और वस्तुओं पर अपने व्यक्तित्व की

.....

उनसे पश्चिम के विचारों के विरुद्ध अच्छा वातावरण तैयार हुआ था।

(प्रबुद्ध भारत नवम्बर 1928)

18. दयानन्द ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि नित्य सत्ताएं और प्रकृति को सृष्टि का उपादान कारण मानते हैं। ईश्वर और जीव दो पृथक्-पृथक् सत्ताएं हैं। दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव भी पृथक हैं। दोनों ही कुछ कार्य करती हैं। अर्थात् स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न परंतु व्याप्त व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं। द्रव्यों का ज्ञान और युक्तिपूर्वक मेल होकर नाना रूप ग्रहण करना सृष्टि कहलाता है। परमेश्वर सृष्टि का रचयिता है। अवद्या के निमित्त से आत्मा बंधन में पड़ता है। सर्व दु:खों से छूटकर बंधरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उनकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना नियत समय तक मुक्ति के आनन्द को भोग कर पुन: संसार में आना मुक्ति कहलाती है।

ऐसी छाप डाली जो मिट नहीं सकती। दयानन्द वह व्यक्ति था जिसे अपने काम का निश्चत ज्ञान था और जिसके लिए वह इस संसार में भेजा गया था। उन्होंने अपने साधन स्वयं चुने और प्रबलतम् आत्म-अनुभूति के साथ अपने वातावरण का निर्माण किया और जन्मजात नेता के रूप में वीरतापूर्वक अपनी भावना को क्रियात्मक रूप दिया। उन्होंने मेरे मन पर जो सबसे बड़ी छाप डाली वह एक शब्द में यह थी कि दयानन्द ने आध्यात्मिकता को मूर्त रूप दिया'' -सम्पादक)

7-सामाजिक सुधार

आर्य समाज सिद्धान्त रूप में स्त्री, पुरुष और समस्त मानव समाज की समानता के न्याय में विश्वास रखता है। वह जन्मना जातपात की प्रथा का खंडन करके गुण-कर्मानुसार वर्णविभाजन को स्वीकार करता है अर्थात् समाज में रुचि और योग्यता के अनुसार कार्य-विभाजन होना चाहिए और उसके लक्ष्य में समाज और राष्ट्र की सेवा होनी चाहिए। राज्य ही समाज के कल्याणार्थ पारितोषिक व दण्ड के रूप में किसी व्यक्ति को उच्च व हेय वर्ण में उन्नत या अवनत कर सकता है। दयानन्द की कामना थी कि प्रत्येक व्यक्ति को अधिकाधिक ज्ञान प्राप्ति का अवसर मिलना चाहिए जिससे वह समाज में अधिक से अधिक ऊंचा उठ सके। **सबसे अधिक उन्हें अस्पृश्यों की विद्यमानता का घृणित अन्याय सहन न था। उनके (अस्पृश्यों) अपहृत अधिकारों का जितनी उग्रता से दयानन्द ने समर्थन किया उतनी उग्रता से अन्य किसी ने नहीं किया। अस्पृश्य लोग समानता के आधार पर आर्य**

समाज में प्रविष्ट होते हैं क्योंकि आर्य कोई जाति नहीं है। वेदानुकूल श्रेष्ठ कर्म करने वाले को आर्य और पाप एवं दुष्टता का जीवन व्यतीत करने वाले को दस्यु कहते हैं।

भारत की स्त्री-जाति की पतितावस्था सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता और निर्भीकता का परिचय दिया। दयानन्द ने उन बुराइयों के विरुद्ध महती क्रांति की जिनसे स्त्रियां पीड़ित थी। उन्होंने बताया कि स्वर्णिम युग में स्त्रियों को घर और समाज में पुरुषों के समान उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें पुरुषों के सदृश शिक्षित करना चाहिए और गृहस्थ के प्रबंध तथा अर्थ (पैसे) पर उनका ही सर्वोपरि अधिकार रहना चाहिए। दयानन्द ने विवाह में पुरुष और स्त्री के समानाधिकार का प्रतिपादन किया है।[19] यद्यपि वे विवाह को अटूट सम्बंध मानते थे तथापि उन्होंने शूद्रों के विधवा-विवाह को विहित माना है वे यहां तक कह गए कि यदि विवाह से सन्तानोत्पति न हो तो स्त्री पुरुष अस्थायी रूप से परस्पर समागम कर सकते हैं।

8- आर्य समाज का शिक्षा कार्य

आर्य समाज का आठवां नियम है अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना। इस नियम को क्रियात्यक रूप देते हुए आर्य समाज ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए बहुत बड़ा काम किया हैं, इसने मुख्यतया पंजाब और उत्तर प्रदेश में लड़कों और लड़कियों के स्कूलों और कालेजों का जाल बिछाया हुआ है। **दयानन्द ऐग्लो**

19. विवाह में लड़की की उम्र कम से कम 16 और पुरुष की 25 वर्ष की होनी चाहिए। दयानन्द बाल-विवाह, अनमेल बहु और वृद्ध-विवाह के विरोधी थे।

वैदिक कालेज लाहौर और गुरुकुल कांगड़ी आर्यजनों के परिश्रम के आदर्श मधुकोष रहे हैं।[20] इन संस्थाओं ने राष्ट्रीय आर्य शिक्षा का केन्द्र बनकर जाति की शक्तियों के विकास में बड़ा योग दिया है जो आर्य संस्कृति के ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ पाश्चात्य बौद्धिक और औद्योगिक सफलताओं का भी उपयोग करती हैं।

आर्य समाज की इन प्रगतियों के साथ हम उसकी सेवा सहायता की प्रगति यथा अनाथालयों, उद्योगशालाओं, विधवाश्रमों, दुर्भिक्ष और महामारी आदि आपातकालीन सेवा सहायता और रक्षा कार्यों को जोड़ सकते हैं।

उपसंहार

यह दिखाने के लिए कि नेतृत्व की भावना और दक्षता से युक्त यह महान् संन्यासी, जन-सामान्य का कितना प्रबल उद्धारक था मैंने इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ कह दिया है। **वस्तुतः भारतीय राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जन्म और जागरण में जो इस समय (मई 1930) उस देश में अपने पूर्ण यौवन में देख पड़ रही है सबसे प्रबल प्रेरणा दयानन्द से प्राप्त हुई थी।** उनके आर्यसमाज ने चाहे दयानन्द ने चाहा हो या न चाहा हो [21] 1905 की बंग क्रांति का मार्ग

---

20. दयानन्द वैदिक कालेज 1886 में और गुरुकुल कांगड़ी 1902 में स्थापित हुआ।

21. दयानन्द ने सार्वजनिक रूप से इसका विरोध किया है। उन्होंने सदैव अपने को अराजनीतिक और ब्रिटिश अविरोधी प्रकट किया है परंतु ब्रिटिश गवर्नमेंट का निर्णय इससे भिन्न था। आर्य समाज सामूहिक रूप से राजनीति से पृथक रहता है परंतु इसके सदस्य व्यक्तिगत रूप में स्वतंत्र होते हैं।

प्रशस्त किया था। वस्तुतः दयानन्द पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय संगठन के प्रबलतम अग्रणियों में से थे।

''ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में अपराजेय शक्ति और स्थिरता का संचार किया था तथा सिंह पराक्रम फूंक दिया।''

''ऋषि दयानन्द उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। महर्षि कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण थे। दयानन्द ने अस्पृश्यता व अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया। भारत में स्त्रियों को शोचनीय दशा को सुधारने में भी महर्षि दयानन्द ने बड़ी उदारता एवं साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय-भावना और जन-जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उन्हीं की थी। भारत के पुनर्निर्माण और भारत की नवचेतना की जागृति में उनका योगदान भारत के लिए सबसे बड़ा वरदान है।''

-रोमां रोलां (फ्रांस)

elibrary.thearyasamaj.org

- + -

महर्षि वाणी

वायु शुद्ध रहने से वृष्टि का जल भी शुद्ध रहता है। वृष्टि और वायु का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है और सब देश का जल वृष्टि से उत्पन्न होता है। जल स्वच्छ और वायु के भी स्वच्छ रहने से वृक्षों के फल, पुष्प, रस ये बड़े ही शुद्ध और पुष्टिकारक होते हैं। इसी तरह अन्नादि सब द्रव्य शुद्ध और पुष्टिकारक होते हैं। इसलिए शरीर को सुख होकर अन्न से बल उत्पन्न होता है। प्राचीन आर्य लोगों के शौर्य का वर्णन इस प्रसंग में करने की आवश्यकता नहीं है। वायु और जल की दुर्गन्ध नष्ट होकर उनमें शुद्धि और पुष्टि वर्धनादि गुण बढ़ने से सब चराचरों को सुख होता है।

–पूना प्रवचन, सातवां प्रवचन

जनके साधन अनित्य है। उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता और जो मुक्ति में से कोई भी जीव लौटकर इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव विशेष हो जाने चाहिए।

–स.प्र.पृ.228